ISSN: 2456-947X, Vol. I, Issue. I, June-2017

अनघ

(An International Journal of Hindi Language, Literature and Culture)

मानस का हंस : भारतीय परम्परा एवं आधुनिक सम्वेदना का समन्वयात्मक रूप

डॉ अनुराधा गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
कमला नेहरु कॉलेज, दिल्ली विश्विद्यालय
नई दिल्ली, भारत
ईमेल-anuradha2012@gmail.com

शोध-सार - लेखन में अपने ख़ास लखनवी अंदाज़ और भारतीय संस्कृति के सजीव चित्रण के लिए जाने जाने वाले अमृतलाल नागर हिन्दी उपन्यास साहित्य की परम्परा में निश्चय ही एक विशिष्ट नाम है । १७ अगस्त १९१६ ,गोकुलपुर, आगरा उ० प्र० में जन्मे नागर जी का पिछला वर्ष जन्मशाब्दी वर्ष के रूप में सादर मनाया गया । इनके उपन्यास उत्तर प्रदेश भूखंड की परिधि में घूमने के बावजूद भूखंडीय एकान्तिक निजता पर सीमित न रहकर सम्पूर्ण भारत और भारतीयता के प्रतिनिधि के रूप में उभर कर आते हैं और यही उनके उपन्यासों की उल्लेखनीय खासियत है । बंगला के शरच्चंद्र की उपन्यास के माध्यम से बंगोद्घाटिनी शक्ति हिन्दी में अमृतलाल नागर में ही दीख पड़ती है । प्रेमचंदोत्तर उपन्यास परम्परा में एक दौर ऐसा था जब अधिकाँश उपन्यासकार आयातित दर्शनों और विचारधारों को भारतीय जनमानस पर रूपायित करते दिखते हैं । यह प्रयोगवाद की स्थिति भारतीय पाठकों के लिए सहज संप्रेषणीय रही हो, संदेहास्पद है । नागर जी भारतीय आत्मा के कुशल चितेरे रहे हैं, उनके उपन्यास भारत की जड़ से जुड़कर भारत की आत्मा का उद्घाटन करते चलते हैं । तभी ये निःसंदेह पाठक को देश की अंतरात्मा और बाह्य परिस्थितियों से साक्षात्कार कराने में सक्षम रहे हैं । उपरोक्त टिप्पणी में जब नागर जी के उपन्यासों को भारतीय संस्कृति का वाहक कहा गया है तो उसके पीछे आशय उपन्यास में आए पात्रों, वस्तुओं और स्थानों के केवल भारतीय नामों और परम्पराओं के स्थूल परिचय से नहीं अपितु कथा के माध्यम से किसी भी भारतीय जातिविशेष, प्रदेशविशेष की जीवन पद्धति के अंतर्बाह्य रूप की उस अन्तरंग पहचान से है जो पूरे उपन्यास में पैबस्त होती है । इसी सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि जब हम बात नागर जी के उपन्यासों में भारतीय परम्परा और संस्कृति के दर्शन की करते हैं तो उस समय उन्हें आधुनिकता से कटा समझने की भूल न करें, हाँ वे पाश्चात्य प्रभावों से आक्रान्त अवश्य नहीं थे ।

मूल शब्द - भारतीय संस्कृति का पोषण, आधुनिकता और परम्परा का समन्वय, तुलसीदास का प्रमाणिक जीवन चरित्र, तत्कालीन युग दर्शन, मानवतावाद की स्थापना

I. परिचय

अमृत लाल नागर हिन्दी के शीर्षस्थ गंभीर उपन्यासकारों में गिने जाते हैं । लगभग ई० सन १९४० से नागर जी की उपन्यास यात्रा शुरू होती है । महाकाल १९४२-१९४३, सेठ बांकेमल १९४४, बूँद और समुद्र १९५६, शतरंज के मोहरे १९५९, सुहाग के नुपुर १९६०, अमृत और विष १९६६, सात घूंघटवाला मुखड़ा १९६८, एकदा नैमिषारणये १९७१, मानस का हंस १९७२, नाच्यौ बहुत गोपाल १९७८ खंजन नयन १९८१, बिखरे तिनके १९८३, अग्निगर्भा १९८३, करवट १९८५ एवं पीढियां १९९० इनके प्रकाशित बेहद अहम उपन्यास हैं । इनमे 'मानस का हंस' गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर लिखी कदाचित सर्वाधिक प्रमाणिक कृति है । 'लार्जर दैन लाइफ' को चरितार्थ करती यह कृति अपने कैनवस में पूरे युग को उसकी समस्त शक्तियों और कमजोरियों के साथ समेटने के आयोजन में सफल रही है । प्रमाणिक तथ्यों के अभाव में कृति को इस मुकाम तक ला पाना निश्चय ही बेहद श्रम साध्य और समर्पण का कार्य रहा होगा जिसे नागर जी जैसा लेखन को समर्पित लेखक ही कर सकता है । अमृत लाल नागर मानस का हंस के आमुख में लिखते हैं 'यह सच है कि गोसाईं जी की सही जीवन-कथा नहीं मिलती । यों कहने को तो रघुवर दास, वेणी माधव दास, कृष्ण दत्त मिश्र, अविनाश रे और संत तुलसी साहब के लिखे गोंसाई जी के जीवन के पांच जीवन चरित हैं । किन्तु विद्वानों के अनुसार वे प्रमाणिक नहीं माने जा सकते । रघुवर दास अपने आप को गोस्वामी जी का शिष्य बताते हैं, लेकिन उनके द्वारा प्रणीत तुलसी चरित की बातें स्वयम गोस्वामी जी की आत्मकथापरक कविताओं से मेल नहीं खाती । इस उपन्यास को लिखने से पहले मैंने `कवितावली' और विनय पत्रिका को खासतौर से पढ़ा । विनय पत्रिका में तुलसी के अंत: संघर्ष के ऐसे अनमोल क्षण संजोए हुए हैं कि उसके अनुसार ही तुलसी के मनोव्यक्तित्व का ढांचा खड़ा करना मुझे श्रेयस्कर लगा । रामचरित मानस की पृष्ठभूमि में मानसकार की मनोछवि निहारने में भी मुझे पत्रिका के तुलसी से सहायता मिली । कवितावली और हनुमान बाहुक' में खासतौर से और दोहावली और गीतावली में कहीं कहीं तुलसी की झांकी मिलती है ।' [1] कथाकार के इस आत्मकथ्य से ही सुधी पाठक और विद्वानजन यह अंदाज़ लगा सकते हैं कि चार सौ वर्षों से भी अधिक की अवधि से जिस महाकवि तुलसी ने भारत के जनमानस के रामकथा का अमृतपान कराया , उसके जीवन को आधार बनाकर नागर जी ने कितना परिश्रम करके इस कालजयी रचना का प्रणयन किया । 'मानस का हंस' के लेखक के सम्मुख उनके चरित्र की एक छवि थी जो उनका काव्य पढ़कर उभरती थी तथा जिसे लोकमानस में व्याप्त उन्होंने देखा था,उस मानसी छवि को पुष्ट तथ्यों व घटनाओं का आकार देकर साकार बनाना उनका कार्य था । कार्य अत्यंत कठिन था । इसके लिए नागर जी ने दो बिन्दुओं पर स्वयम को केन्द्रित किए रखा । एक तो तुलसी जैसे असाधारण रामभक्त के हृदय में स्थित भक्ति का प्रबल भाव उनके व्यक्तित्व में आरम्भ से ही ढूंढा जाना और उस भाव को उन्होंने लौकिक प्रणय अथवा रति भाव का उदात्तीकरण स्वीकार किया । दूसरा बिंदु यह है कि तुलसी के काव्य में से उन्होंने मनोवैज्ञानिक विशेषताएं तथा विशिष्ट मानसिक स्थितियों को पकड़ने व समझने का प्रयास किया । इन्हीं दोनों बिन्दुओं के प्रकाश में जनश्रुतियों को ढालकर लेखक ने तुलसी का सम्पूर्ण जीवन-चरित्र इस कौशल से प्रस्तुत किया कि वह एक कालजयी उपन्यास बन गया ।

'मानस का हंस' उनकी उपन्यास कला का सर्वोच्च उदाहरण है साथ ही उनकी विचारधारा का बेहतरीन नमूना भी । इन्होने सामाजिक अनुभवों की कसौटी पर अपने विचारों को कसा है । उनकी कसौटी मूलत: साधारण भारतीय जन की कसौटी है । तर्क और अनुभव का विशिष्ट संयोजन यहाँ दिखलाई देता है । 'मानस का हंस' में पात्रों का समाजशास्त्रीय, ऐतिहासिक, व कहीं कहीं स्वच्छन्द विश्लेषण उनकी आधुनिक व पम्परा पोषित विचारधारा को सामने लाता है । युवा तुलसीदास के जीवन में मोहिनी प्रसंग का संयोजन अंध श्रद्धालुओं को अनुचित दुस्साहस लग सकता है तो तुलसी के आध्यात्मिक अनुभवों को श्रद्धा के साथ अंकित करना बहुतेरे आधुनिकता के आग्रहियों पर नागवार गुजर सकता है । नागर जी इन दोनों प्रकार के प्रतिवादों से वे विचलित नहीं होते । वस्तुत: तुलसी और भारतीय परम्परा में अदम्य श्रद्धा और तार्किक दृष्टिकोण इस उपन्यास के केंद्र में कार्य करता है जिसमे अद्भुत साम्य नागर जी बनाए रखते हैं । तुलसी के भीतर 'राम-काम' का द्वंद्व इसी का उदाहरण है । डॉ. मिश्र इस ओर संकेत करते हैं । "मानस का हंस अमृतलाल नागर का एक श्रेष्ठ उपन्यास है । हिन्दी के महत्त्वपूर्ण उपन्यासों में उसकी गणना की जाती है । नागर जी ने अंत:साक्ष्य और बहिस्साक्ष्य के आधार पर तुलसी के चरित्र की बहुत जीवंत और प्रभावशाली रचना की है । तुलसी के माध्यम से उनके समय का व्यापक परिवेश भी चित्रित हुआ है । तुलसी इस व्यापक परिवेश की विसंगतियों और अपने भीतर की कमजोरियों से निरंतर लड़ते हुए तुलसी बनते हैं । राम-काम का जो भायानक द्वंद्व उनके भीतर चलता है उससे लहू-लुहान होते हुए भी वे राम के प्रति अपने को सर्वस्व भाव से समर्पित करने में सफल हो जाते हैं।" [2]

सृजनशील रचनाकार अपने युग के प्रति प्रतिबद्ध होता है । नागर जी की प्रतिबद्धता उनके उपन्यासों में बखूबी देखी जा सकती है तभी हर उपन्यास की कथावस्तु अपने परिवेश में सजीव हो उठी है । `मानस का हंस' अपने परिवेश में तत्कालीन युग का महाख्यान है जिसमे भारतीयता की असल खोज की जा सकती है । यह पहचान काल अथवा युग से परिधातीत; समग्र रूप में `भारतीय आत्मा' की खोज है । युग के प्रति प्रतिबद्धता और सजीवता, वृहद् और गहन शोधपरक कथानक, व्यक्ति के मनोभावों, उसके अंतर्द्वंदों का बेहतरीन चित्रण और सर्वाधिक विशेष बात अंधश्रद्धा से अलग तार्किक विश्लेषण जैसी विशेषताएं ही `मानस का हंस' को कालजयी रचना बनाते हैं । यह जीवनीप्रधान कालजयी कृति आधुनिकता और परम्परा के मणिकांचन योग का सुंदर उदाहरण है जिसे वस्तुतः भारतीय अस्मिता की पहचान कहा जा सकता है । डॉ. योगेन्द्र

लिखते हैं, "हिन्दी-कथा साहित्य में भले ही प्रेमचन्द कथा-सम्राट माने जाते हैं,लेकिन उनके `गोदान' की टक्कर का कोई `कालजयी' उपन्यास अगर कभी ढूंढा जाएगा तो समीक्षक निश्चय ही `मानस का हंस' स्वीकार करेंगे । जिन महाकवि तुलसीदास ने विश्व साहित्य को कालजयी रचना के रूप में रामचरित मानस जैसा महाकाव्य दिया है, उन्हीं को कथाकार अमृतलाल नागर ने अपने इस कालजयी उपन्यास मानस का हंस में अमृत बना दिया ।" [3]

भारतीय चिन्तन का केंद्र व्यष्टि की महत्ता को स्वीकार करते हुए उसका समिष्टि में समन्वय रहा है । दोनों का महत्त्व उनके पारस्परिक एकत्व और संयोजन में माना जाता है । अमृत लाल नागर इस सिद्धांत के प्रबल समर्थक हैं । व्यक्ति की सत्ता समाज से और समाज का अस्तित्व व्यक्ति से है, उनके उपन्यासों का मूल स्वर यही है । 'मानस का हंस' में भी वे व्यक्ति के एकांत महत्त्व को अस्वीकार करते हैं, "टूटी झोंपड़ियों के बीच में अकेले महल की कोई शोभा नहीं होती है । वह अपनी सारी भव्यता कलात्मकता में क्रूर और गंवार लगता है । (मानस का हंस, पृष्ठ-374) नागर जी की यह टिप्पणी समाजवादी व्यवस्था के प्रति उनके दृढ आग्रह को दिखाती है । अस्सी के दशक के वर्ग वैषम्य और पूंजीवादी व्यवस्था के विद्रूप फैलाव की टीस यहाँ महसूस की जा सकती है । तुलसी की महामारी और अकाल से पीड़ित जनता के लिए अतीव पीड़ा, आगे बढ़कर युवाओं को एकजुट कर मदद करने की तत्परता जप-तप को समर्पित आत्मकेंद्रित संत के वश की बात नहीं । तुलसी कन्दराओं में कैद हो या जंगलों में भटकते हुए अपने राम को खोजते हुए समाज से कट नहीं जाते, उनके राम जन-जन में बसते हैं । उनका कवि मन जिस 'साहब' के प्रति निष्ठावान है वो घट-घट में रमा हुआ है इसीलिए वे 'मानवमन के दर्शन करने का योग ही जीवन भर साधते रहे' ।(वही, 340) जन सेवा राम सेवा करने जैसा ही सुख देती है तभी ब्राहमण हन्ता भूखे-बेहाल दलित को, समाज की कटु भर्त्सना की परवाह किए बगैर,न सिर्फ भोजन देते हैं बल्कि उसके पद प्रक्षालन भी करते हैं । अपने विरोधी समाज के द्वारा घोर निंदा का सामना वे पूरे आत्मविश्वास और दृढ़ता से करते हैं । एक युवक प्रश्न करता है ।

" सुना है आप जाति-पांति नहीं मानते?"

"मानता हूँ और नहीं भी मानता ।"

"कैसे?"

"वर्णाश्रम धर्म को मानता हूँ परन्तु प्रेम धर्म को वर्णाश्रम से भी ऊपर मानता हूँ ।"

तुलसी का दौर और परिवेश कट्टर वर्ण व्यवस्था जैसी तमाम सामाजिक रूढ़ियों और परम्पराओं में जकड़ा हुआ था । तुलसी ब्राहमण थे उनकी शिक्षा- दीक्षा इसी परिवेश में हुई । वर्णाश्रम में उनकी आस्था इसी परिवेश की देन है, जिसे नागर जी अपने नायक में नकार नहीं सकते थे, बावजूद इसके मानव धर्म सर्वोपरि रहा है । वे लिखते हैं, "तुलसी ने वर्णाश्रम धर्म का पोषण भले ही किया हो पर सन्सकारहीन, कुकर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि को लताड़ने में वे किसी से पीछे नहीं रहे । तुलसी का जीवन संघर्ष, विद्रोह और समर्पण भरा है । इस दृष्टि से वह अब भी प्रेरणादायक है ।" (आमुख, मानस का हंस) सम्पूर्ण उपन्यास में जीवन के प्रति गहन आस्था व्यक्त हुई है । यह आस्था ही है जो विकट परिस्थितियों में थके हारे व्यक्ति के विश्वास को टूटने नहीं देती बल्कि अटल विश्वास के स्फुरण से जीवन जीने की कला सिखाती है "जो देवमूर्ति मंदिर में प्रतिष्ठित होकर लाखों के द्वारा पूजी जाती हैं वह पहले शिल्पी के हज़ारों हथौड़ों की चोटें भी सहती हैं ।" तुलसी का जीवन संघर्षों की आंच में तपकर सोने सा निखरा है किन्तु यह आसान न था, कई बार वो टूटते हैं निराशा का सघन अन्धकार उनकी आस्था के सूर्य को करीब करीब निगल ही लेता है । यहाँ तक कि अंतर्द्वंद्व के चरम पर पहुंचे तुलसी आत्महत्या जैसा विचार मन में लाने लगते हैं । किन्तु पुन: अनास्था और निराशा पर आस्था और आशा की विजय होती है जो सही मायने में भारतीय मूल्यों और दर्शन की जीत है । तुलसी तो सही मायने में आस्था की सजीव मूर्ति बन जाते हैं । 'मानस का हंस' उस दौर का उपन्यास है जब साहित्य में अनास्था, निराशा, कुंठा, मृत्यु, त्रास जैसे स्वर गूँज रहे थे तब तुलसी को नायक के रूप में स्थापित करने की चाह और मित्र महेश जी के मत के विरुद्ध 'चमत्कारबाजी की चूहा दौड़' से सर्वथा भिन्न 'यथार्थवादी तुलसी' की तलाश महज आकस्मिक घटना तो नहीं हो सकती । वास्तविकता में अनास्था और अविश्वास के दौर में नागर जी मानस के रूप में भारतीय आस्था और विश्वास के स्वर बिखेरना चाहते थे और तुलसी के रूप में एक आदर्श किन्तु यथार्थ के करीब नायक को स्थापित कर भारतीय जन मानस में आशा और संघर्ष की दबी चिंगारी को जलाए रखना चाहते थे । सत्तर-अस्सी का दशक राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक सभी दृष्टियों से गहरी हताशा के साथ उबलते आक्रोश का दौर था । उपन्यास में वर्णित मुगलों-पठानों के दौर की बर्बरता(अकबर के समय को छोड़कर), भारतीय जन मानस की जर्जर और अस्थिर अवस्था, शूल सी गहरी धंसी पीड़ा पाठकों के हृदय को गहरे मथ देती हैं, उनमे स्वराज्य और स्वतंत्रता की कीमत का बोध और गहराने लगता है । जीवन के प्रति मोह, सामंजस्य और संतुलन साम्प्रदायिक सद्भाव, लक्ष्य के प्रति गहरी निष्ठा और लगन, आत्मसंयम और अटूट आत्मविश्वास जैसे मूल्य उपन्यास में गहरे पैबस्त हैं । तुलसी की साधारण मानव से असाधारण संत होने की दीर्घ और विषम यात्रा में जीवन के कई रहस्य छिपे हैं ।

'मानस के हंस' के स्त्री पात्र बेहद महत्वपूर्ण हैं । ये स्त्रियाँ विवेकी हैं तार्किक हैं स्वाभिमानी हैं बावजूद इसके प्राय: पुरुषों की काम भावना को भडकाने का काम करती हैं । तुलसी की टिप्पणी 'ढोल गंवार पशु शूद्र और नारी सब ताडन के अधिकारी' पर रत्नावली सवाल उठाती हैं किन्तु अधिकांश स्त्रियों को माया और काम की प्रतिमूर्ति मानकर लक्ष्य से

भटकाने के आरोप में चतुराई से लेखक इस प्रश्न और तुलसी को आधुनिक आलोचकों की नजर में अपराधी होने से बच और बचा ले जाते है । बहरहाल स्त्रियों के प्रति तुलसी के मन में तब तक कोई दुर्भावना नहीं जब तक वह सीता की तरह चरित्रवान है । स्वयम राम-काम के भीषण द्वन्द्वों से डूबते-उबरते तुलसी के मन में काम भावना को भडकाने वाली स्त्रियों के लिए आदर नहीं । इसका एक कारण माना जा सकता है उस समय का सामजिक वातावरण । तत्कालीन समाज स्त्रियों के लिए घोर अनुदार था विशेषकर विधवा या वैश्यावृत्ति में लिप्त स्त्रियों के लिए । विधवा स्त्रियों के लिए कठोर और कुत्सित सामाजिक बंधन उन्हें धर्म की आड़ में अपने मन की दमित इच्छाओं को पूरा करने पर मजबूर करता था । साथ ही ढोंगी साधु और मठाधीश धर्म की आड़ में घृणित कृत्यों को अंजाम देते थे । ये सारी स्थितियां वजह हो सकती हैं तुलसी के मन में स्त्रियों की ऐसी नकारात्मक छवि बनाने में । हालांकि मोहिनी के प्रति आसक्ति और आकर्षण तथा पत्नी रत्नावली का पति की घोर आसक्ति और काम लिप्सा के प्रति तिरस्कार व्यक्त करता यह कथन, "नारी भले ही कामवश माता क्यों न बने किन्तु माता बनकर वह एक जगह निष्काम भी हो जाती है । और पुरुष पिता बनकर भी अपना दायित्व अनुभव नहीं करता । वह निरे चाम का लोभी है, जीव में रमे राम का नहीं" उन्हें राम के करीब ले जाने वाले कारण बनते हैं, जिसके लिए वे हमेशा कृतज्ञ रहे । रतनावली के प्रति उनकी कठोरता और रत्नावली द्वारा पति परित्यक्तता होने के बावजूद आजीवन पति के प्रति समर्पण पाठकों के मन में करुणा के साथ क्षोभ भी भर देता है इस का एहसास नागर जी को था तभी अंत समय में उनका प्रायश्चित, रत्ना के प्रति आद्रता और पत्नी के अंतिम समय में पत्नी के पास उपस्थिति दिखा कर कहीं न कहीं तुलसी के पक्ष में माहौल बनाने की कोशिश करते हैं । नि:संदेह रामबोला से तुलसी और तुलसी से गोस्वामी तुलसी की यात्रा तुलसी के लिए बेहद मुश्किल भरी रही होगी । पुत्र और पत्नी जो कभी उनके जीवन का केन्द्रीय आधार थे, उनको त्याग पाने का निर्णय, पुत्र की मृत्यु की खबर, एकाकी पत्नी का उनसे उनके आस-पास बने रहने देने की आर्त विनती किसी भी मनुष्य को विचलित कर सकती हैं, उन्हें भी करती है । किन्तु राम को पाने की जिद्द और प्रेम उनकी अतीव शक्ति बनते हैं जो निश्चय ही उन्हें साधारण से असाधारण बनाता है । तुलसी के साधारण से असाधारण होने तक की यात्रा पर आधुनिक आलोचकों ने कई बार सवाल उठाए और उपन्यास की प्रासंगकिता को भी नकारा क्योंकि इसमे तुलसी को लगातार उठता हुआ दिखाया गया है जबकि, " हमने तो बड़े-बड़े व्यक्तियों का खंड-खंड होकर ढहना और धंसकना ही भोगा है, ये क्षण-क्षण अतिरंजनाओं में विराट होते चले जाते व्यक्तित्व हमारे अनुभव और विशवास में कहाँ समा पाएंगे?" [4] राजेन्द्र यादव के अनुसार मानस का हंस लेखक का तुलसीदास के प्रति मात्र श्रद्धा अर्पण का औपन्यासिक प्रयास है । किन्तु मनुष्य का टूटना-ढहना ही तो मात्र लक्ष्य या नियति नहीं । संघर्ष, द्वंद्व से थके-हारे, टूटे, विक्षिप्त व्यक्ति का चित्रण ही मात्र साहित्य को प्रासंगिक नहीं बनाता बल्कि संघर्ष की शक्ति पैदा करना और खंडित मानव की जगह अदम्य आत्मशक्ति से भरे टूट कर पुन: बार-बार सम्हलने की कोशिश करते अखंडित मानव की तस्वीर भी उसे प्रासंगिक और आधुनिक बनाता है ।

II. निष्कर्ष

समग्रत: 'मानस का हंस' में लेखक ने तुलसी के व्यक्तित्व के द्वारा उदार-मानवतावादी दृष्टिकोण की स्थापना की है । तुलसी सगुण भक्त कवि थे । राम के अनन्य उपासक बावजूद इसके अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति उनकी दृष्टि आदरपूर्ण थी । तुलसी के युग में विभिन्न मतान्तरों और धार्मिक सम्प्रदायों की परस्पर द्वेषपूर्ण स्थितियों को लेखक ने अत्यंत कौशल एवं निपुणता के साथ प्रस्तुत किया है । ऐसा करके उपन्यास को आधुनिक सन्दर्भों से जोड़ दिया है । तुलसी ने पीड़ित शोषित लोगों को संगठित कर जन समुदाय की पीड़ा हरने की ओर प्रेरित किया और स्वयम शक्ति अर्जित की । इस तरह तुलसी का 'मानस' लोकल्याणकारी नायक की जीवन गाथा है, जिसका मूल स्वर आम जनता का अपना स्वर है ।"[5]

सन्दर्भ सूची

[१] अमृत लाल नागर, "मानस का हंस", राजपाल एंड संस, दिल्ली-६, चौथा संस्करण-१९७७

[2] डॉ रामदरश मिश्र, "मानस का हंस: ऐतिहासिक संदर्भ", (पुस्तक फ्लैप से) नई संवेदना, विश्ववारा, प्रथम संस्करण,१९८५, इतिहास शोध संस्थान, नई दिल्ली

[3] डॉ योगेन्द्र नाथ शर्मा `अरुण', "मानस का हंस : हिन्दी साहित्य की बेजोड़ निधि", साभार नेट, प्रकाशित ६ जनवरी २०१५, दैनिक ट्रिब्यून

[4] राजेन्द्र यादव, आलोचना १३, उपन्यास अंक, 25 अप्रैल-जून,१९७३, पृष्ठ ४७-४८

[5] नई दुनिया, १४ अप्रैल, १९७४ ।